International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 236-239

हिन्दी दलित कहानियों में स्त्रियों की छवि

डॉ0 निरूपमा कुमारी

सहायक शिक्षिका, (हिन्दी), रामरूद्र उच्च विद्यालय चास, बोकारो, झारखण्ड, भारत।

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य को अनेक विचारधाराएँ एवं आन्दोलन प्रभावित करते रहे हैं। वर्तमान में एक आंदोलन हिन्दीं साहित्य को प्रभावित कर रहा है। उस आंदोलन रूपी साहित्य का नाम है– दलित साहित्य आन्दोलन, यह दलित साहित्य आन्दोलन हिन्दी में मराठी साहित्य के प्रभाव से उत्पन्न हुआ।

दलित शब्द का शाब्दिक और विस्तृत अर्थ दुर्बल, पीड़ित, असहाय, दुखी आदि है। लेकिन दलित साहित्य के संदर्भ में हम दलित शब्द के अर्थ को संकुचित कर देते है। इसका अर्थ केवल वर्ण व्यवस्था में छोटी जाति के समझे जाने वाले अर्थात् शूद्रों के लिए रूढ़ हो चला है, तो दलित साहित्य भी इन्हीं लोगों से संबंधित है जो कि आधुनिक युग में आंदोलन बनकर परिवर्तन द्वारा समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व न्याय दलित अस्मिता स्वाबलंबन के साथ अपने अधिकारों की माँग करते हुए संधर्ष कर रहा है। इस साहित्य का मुख्य ददे्श्य तथा वैचारिक पृष्ठभूमि वही है जो कि डॉ0 भीमराव अंबेडकर के वाडमय में निहित है।[1]

सन् 1990 के बाद हिन्दी में प्रकाशित ओमप्रकाश वाल्मीकि की सलाम, जयप्रकाश कर्दम की नो बार, सूरजपाल चौहान की साजिश और अहिल्या, मोहनदास, नेमिशराय की अपना गाँव और आवाजें, सुशील टाकभौरे की सिलिया, दयानंद बटोही की सुरंग, एस आर हरनोट की जीन काठी, विपिन बिहारी की कंघा, शत्रुधन कुमार की हिस्से की रोटी, प्रहलाद चंद दास की लटकी हुई शर्त, श्यौराज सिंह बेचैन की शोध–प्रबंध, कुसुम वियोगी की अंतिम बयान, अजय नावरिया की उपमहाद्दीप आदि कहानियॉं वर्ण –व्यवस्था के कारण सामाजिक जीवन की मुख्यधारा में हाशिये की जिदंगी व्यतीत कर रहे दलितों की वास्तविक पीड़ा, जातीय संस्कति, संधर्ष और सामाजिक महत्व के कार्यों में अछूत होने के कारण वंचित किया जाने की स्थिति का मार्मिक चित्र उपस्थित करते हुए सदियों से हो रहे शोषण एवं दमन के खिलाफ प्रतिरोध की एक संस्कृति विकसित करती है।[2]

वर्तमान में लिखा जा रहा दलित साहित्य वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था का खंडन करके मानवतावाद का समर्थन करता है, साथ ही सामाजिक ढॉंचे में परिवर्तन लाने की माँग भी करता है। दलित साहित्य वर्षों से बने अंधविश्वासों को तोड़कर आम आदमी के सुख–दुख से जुड़ने की प्रेरणा देता है। जैसी स्थिति दलितों की रही उसी तरह की स्थिति हमारे समाज में स्त्रियों की है। यह साहित्य स्त्रियों की पुरूष के समान अधिकार देने की भी बात करता है।[3]

दलित कहानी अब केवल उत्पीड़न का आख्यान न रहकर भूमंडलीकरण से उत्पन्न समस्याओं तक को अपनी परिधि में समेटकर स्वयं को वैश्विक संदर्भों से जोड़ रही है। अनुवाद और अमरीकावाद की सभ्यता को दलित कहानीकारों ने सलीके से समझ लिया है। बहरहाल दलित साहित्य में यह अच्छी कहानियों का दौर है।[4]

जैसे–जैसे दलित और स्त्री विमर्श ने साहित्य के केन्द्र में अपनी जगह बनायी है और इस विमर्श की प्रक्रिया तेज हुई है। दलित स्त्री के हित या पक्षधरता को लेकर भी चिंतन तेज हुआ है।[5]

दलित स्त्रियों की वास्तविक स्थिति का अनुमान आत्मकथा से लगाया जा सकता है। दलित समाज में स्त्रियों की स्थिती को लेकर कई तरह के मत रहे हैं। एक वर्ग का मानना रहा है, कि अपने समाज के भीतर दलित स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक आजाद और सम्मानजनक स्थिति में रही हैं। किन्तु इधर आई कुछ दलित आत्मकथाएँ इस भ्रम को तोड़ती हैं। अपने–अपने पिंजरे में यौन हिंसा की शिकार औरतों के प्रति दलित समाज में सहानभूति और संवेदना का अभाव दिखता है।– ''स्साली बाहर वालों से तो नुचवा आई और अपनें से........ '' उसके दर्द को टटोलने का कोई प्रयास नही करता था। हाँ उसके अंगों की गोलाई, मोटाई गहराई सभी नापते थे। दलित स्त्री के उत्पीड़न का तुलनात्मक अनुभव सुशीला टाकभौरे ने शिकंजे को दर्द में लिखा है ''मुझमें और मेरी नानी में फर्क क्या है? वह अशिक्षित सफाई र्कमचारी की पीड़ा भोगती थी, मैं शिक्षित होकर भी उच्च पद पर आसीन होकर भी, अपनी पीड़ा से छटपटाती हूँ, तडपती हूँ........... इस समाज व्यवस्था के कर्णधारों से पूछना चाहती हूँ– ऐसा क्यों है? हमारी कितनी और पीढियाँ इस संताप को भोगती रहेंगी (शिकंजे का दर्द)।[6]

यह दर्द सिर्फ सुशीला का नहीं अपितु तिहरा संताप (जाति, लिंग, गरीबी) झेल रही आम दलित स्त्री का है।दलित स्त्रीयाँ खुद भी भेदभाव और आन्तरिक जातिवाद से मुक्त नही हैं। सूरजपाल चौहान ने संतप्त और तिरस्कृत में इन मुद्दों को उठाया है। साथ ही अनैतिक विवाहेतर संबंधो का बेबाक वर्णन भी किया है। इन आत्मकथाओं के माध्यम से जातिव्यवस्था और पितृसत्ता के दो पाटों में पिस रही दलित स्त्री की दयनीय दशा को देखा जा सकता है, जहाँ समानता का कोई मतलब नहीं संवैधानिक प्रावधानों का कोई मूल्य नहीं।[7]

हिन्दी दलित कहानियों में स्त्रियों की छवि दलित स्त्रियों के रूप में भी है और सवर्ण स्त्रियों के रूप में भी है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''मैं हिन्दू क्यों नहीं हूँ'' में दलित चिंतक कांचा इल्लैया, जो कुरूमा (गड़ेरिया) जाति में पैदा हुए, ने कुरूमा स्त्रियों और सवर्ण स्त्रियों की तुलना करते हुए लिखाः–

''हिन्दू पाठ्य–पुस्तकों में आदर्श नारी वह होती है जो बूढी औरत और किसी भी उम्र के मर्द के सामने खाती–पीती नही हैं। एक औरत से यह आशा नहीं की जाती की वह धूम्रपान करे या शराब पिए, भले ही उसका पति खूब धुम्रपान करता हो या बुरा शराबी हो। लेकिन हमारे घरों में कोई उस औरत को बुरा नही मानता जो धूम्रपान करती या शराब पीती है। हम लोगों में अधिकतर स्त्रियाँ चुट्ठा (बीड़ी) पीती हैं। वे हर तरह से कमोवेश आदमियों के बराबर बनने की कोशिश करती हैं।''[8]

वसुधा के संपादक कमला प्रसाद ने 'दलित विशेषांक के संपादकीय में लिखा' ''दलित में महिलाओं की कथा और त्रासद है। उन्हें जाति के संकट के साथ–साथ मर्द का संकट भी झेलना पड़ता है। लेकिन दलित चिंतक डॉ0 चमनलाल इसे दुहरी नही, तिहरी मार मानते हुए लिखते हैं, दलित स्त्रियों तिहरे शोषण का शिकार होती हैं। जबकि पुरूष दोहरा दमन झेलते हैं– आर्थिक शोषण और

भारतीय जाति व्यवस्था में कथित निम्न जाति होने का सामाजिक दमन, जो कई बार हिन्दु धार्मिक नियमों के अनुसार अस्पृश्यता तक चला जाता है। दलित स्त्रियों को ये दोनों दमन तो दलित पुरूषों के साथ झेलने पड़ते हैं ही, सामंती मूल्य व्यवस्था के चलते वे घरों के भीतर पुरूष दमन का शिकार भी होती हैं। दलित पुरूष भी अपने घरों के भीतर और सामाजिक सांस्कृतिक संरचना में स्त्रियों को दोयम दर्जा देते हैं।''[9]

सवर्ण स्त्रियों की तुलना जब दलित स्त्री से की जाती है तो पुनर्विवाह की स्वतंत्रता भी एक प्रमुख अंतर दिखाई देता है।परंतु सवर्ण स्त्रियाँ यदि पुनर्विवाह नहीं करती तो उनके माता–पिता उसे घर में रखने की हैसियत रखते हैं। दलित स्त्रियों का पुनर्विवाह नव जीवन नहीं बल्कि जीवन निर्वाह का एक निमित्त होता है। प्रो0 श्योराज सिंह बेचैन की रचना 'अस्थियों के अक्षर' में आए प्रसंग में सौराज की माँ अपने पति, देवर से जानवरों की तरह मार भी झेलती हैं तो कभी अपने बच्चों की इधर–उधर छोड़कर उन्हें जल्दी काम सिखाने की चिंता करती हैं। इसी चिंता का परिणाम वह दिल्ली में अपने बहनोई के पास सौराज को कुछ काम सीखने के लिए छोड़ती है। अपनी बेटी माया का बाल विवाह कर देती हैं। माया भी बाल विधवा बनती है उसका भी पुनर्विवाह होता है मगर उसे भी पति का सुख नहीं मिलता। बस जीवन को बोझ की तरह जैसे–तेसे काटती है ये माँ–बेटी। ये अशिक्षित और गरीब समाज की उन स्त्रियों के उदाहरण थे जिन्हें समाज ने विवाह करने की आजादी दी फिर भी इनका जीवन किसी कैदी या गुलामों से कष्टकर ही बीता। ये काल्पनिक पात्र नहीं समाज के सच्चे पात्र हैं।[10]

श्यौराज सिंह बेचैन की एक कहानी 'शीतल के सपने' में मुख्य पात्र शीतल दलित चमार जाति की लड़की है जो पढ़ना चाहती है मगर उसके पिता की मौत हो चुकी हैं। माँ निरक्षर और अल्प विकसित मस्तिष्क की है। उसके परिवार में आर्थिक उपार्जन का कोई निश्चित साधन नहीं है। उसके एक चचेरे चाचा जो दिल्ली में मास्टर है, कुछ दिन के लिए वे उसे अपने पास ले आते हैं। मगर वह भी ज्यादा दिन उसे अपने पास रख नहीं पाते। बच्ची शीतल पढ़ाई के प्रति रूचि रखती है। कुछ अक्षर सीखती है। वापस गाँव पहुँचकर वह छोटे बहन–भाइयों को पालने के लिए स्कूल न जाकर बूढी दादी के साथ मजदूरी करने जाती है। ऐसी स्थिति में उसकी पढ़ाई छूट जाती है। एक बूढ़ी दादी उसका सहारा थी। वह भी चल बसी है।

इसी तरह स्त्री शिक्षा से जुड़ी एक कहानी 'सुशीला टाकभौरे की सिलिया' है। 'सिलिया' भंगी समाज की बच्ची है। जाति विषमतावादी समाज में पढाई करने के लिए उसे अनेक विषम परिस्थितियों से गुजरना पड़ता हैं।[11]

'कौशल पवार' की कहानी 'वर्दी' की 'नेहा' चूहड़ा जाति से है। उसके पिता उसके स्कुल की वर्दी के लिए कफन का कपड़ा ले आते हैं। सभ्य संभ्रात समाज के त्याज्य वस्तुओं का इस्तमाल वह करने के लिए तैयार हैं लेकिन जातीय दंश, अपमान सहने के लिए तैयार नही है।

इस तरह दलित लड़कियों या स्त्री की नई पीढ़ी का रूझान शिक्षा की ओर दिखाई पड़ता है। इन कहानियों में स्त्री मुक्ति और शिक्षा से जुड़े प्रश्न भी उभरते हैं।

वरिष्ठ कथाकार विजय का कथा संग्रह 'जझद' में कुछ कहानियों स्त्रियों पर केन्द्रित हैं। सुरक्षा कहानी में मंत्री अलवारिया और रश्मि जी जैसे पात्रों के माध्यम से आदिवासी जीवन के भीतर सुधार और विकास की वास्तविकता से परिचित कराती हैं। 'टिनोपाल बेबी' दलित जनजाति स्त्री पर दोहरे अत्याचार की कथा है। किसी विदेशी द्वारा असिया के साथ बलात्कार से बहुत से गोरा बच्चा पैदा होता हैं। उसका पति नगिया उस बच्चे को लेकर असिया से पूछता है। असिया सच बता देती है। तो नगिया उसकी तथा उस बच्चे की हत्या कर देता है। 'लाक्षागृह' मुंबई के झोपड़पट्टी निवासियो के जीवन की बेहतरीन कहानी है। लेखक कहता है ''शायद हर फुटपाथ या झुग्गी में रहने वाली अकेली औरत के जो बच्चा होता है उसका बाप जुलुम होता है।'' दूसरे बाबू जी कहानी में दलितों और आदिवासियों के श्रम सौन्दर्य का चित्रण कथाकार ते बड़े सुंदर शब्दों में किया है– ''ये भिखारी नहीं' धरती के प्रहरी हैं। इनके पसीने से धरती की कोख का बीज फसल बनता है। इनकी सीमित जरूरतों के बाद इनके श्रम का फल शहरी रईस लूटते हैं, ऐश करते हैं। इनसे सुरक्षित जंगल ही तो वरूण के रथ को नीचे उतारते हैं। जीवन और संस्कृति के मशाल हैं ये जंगली लगते लोग।[12]

दलित स्त्री चेतना से संबंधित एक कहानी 'जोहड़ी' शीर्षक से 'कथादेश' के अंक 2011 दिसम्बर में प्रकाशित हुई। कहानीकार हैं डॉ0 कौशल पंवार। यह कहानी नायिका प्रधान है और नायिका का नाम है बतेरी, जो साहस स्वाभिमान, हीनता बोध से मुक्त और विद्रोह की भावना से युक्त है। जोहड़ी, कहानी में समस्त धटनाओं का केन्द्रीय स्थल है। गाँव को महामारी से बचाने वाला जोहड़ी वाला बाबा इसी के किनारे आकर रहने लगता है कहानी की नायिका 'बतेरी' अनपढ़ है। लेकिन समाज की पाठशाला में इसे अनुभव ज्ञान प्राप्त हो गया है जिसके कारण वह निडर और तार्किक हैं। कई बार भूतों के डर से बतेरी की सहेलियाँ दोपहर को जोहड़ी पर जाने से मना करती – '' ये तो जाण–बूझ के बनाया गया ढकोसला है, कोई भूत–वूत नही होता। बतेरी का परिवार अछूत होने के कारण इस बाबा के दर्शन दूर से ही सकता था। बाबा झोपड़े के बाहर निकलकर प्रसाद ले लिया करता और मोर के पंखों से बने झाड़ू को उनके सर पर दूर से फेरकर आशीष दे देता। फिर उस झाड़ू झाड़ देता था ताकि उस झाड़ू से दूसरी महिलाएँ भींट न हो जायें।

दलित स्त्री दलित होने के कारण जहाँ जातिभेद झेलती है वही उसे स्त्री होने के कारण अन्य उत्पीड़नों का सामना भी करना पडता है। जो सुरक्षा सवर्ण स्त्रियों को मिली है वह उससे वांचित है। उसकी आर्थिक स्थिति पुरूष वर्ग को शोषण का अवसर देती है। बतेरी और उसका भाई रामभेर भट्टा पर काम कर रहे थे जहाँ धुरती हुई जमींनदार की आँखे............ बतेरी जब भी जमींदार की तरफ देखती तो घबरा जाती ......बतेरी को काम करते हुए ऐसा लगता रहा जैसे किसी की आँखे उसकी ओर हैं। उसे घबराहट हो रही थी।[13]

बदला, सामाजिक भेदभाव, सवर्णो के पाखंड, दलित स्त्रियों पर यौनिक अत्याचार, अंतर्जातीय विवाह जैसे चिर–परिचित मुद्दों पर दलित कहानी केंद्रित रहती है। नए मुद्दे बहुत कम उभर रहे है।

सूरजपाल चौहान की कहानी 'साजिश' में नत्थू की पत्नी शांता पति को बैंक से सूअर–पालन के लिए नहीं, ट्रांसपोर्ट व्यवसाय के लिए कर्ज दिलवाना चाहती है। वह अपने परंपरागत व्यवसाय के पक्ष में नही है। बैंक मैनेजर सूअर पालन के लिए कर्ज लेने के लिए दबाव डालता है। फिर शांता में अचानक कार्यकर्त्ताओं वाली सक्रीयता आ जाती है। मामला बैंक के सामने धरने तक आ पहुँचता है।

सूरजपाल चौहान की कहानी – 'बदबू' की संतोष आज की स्त्री है। वह जानती है कि मैंला ढोने या सफाई के काम से मुक्ति नहीं पायी तो जीवन नरक–कुंड हो जाएगा। जहाँ के बंद दरवाजे से वापसी मुश्किल है। वह दसवीं पास है। गाँव में घरेलू पैखाने नही थे, वहाँ मैंला ढोने का काम नही करना पड़ता था। वहाँ उसका परिवार खेतिहर मजदूर था। सरकारी नौकरी वाले दामाद के चक्कर में एक नवीं फेल, निगम के सफाई कर्मचारी से उसकी शादी कर दी जाती है। शादी के बाद शहर आने पर ससुराल वाले

उसे सफाई के काम में जबरन जोतते हैं। सास के साथ वह पहले दिन काम पर गयी तो मल–मूत्र वाले पानी से उसके कपड़े भींग गए। घर आते–आते उसे उबकाई आने लगी। वह साबुन मल–मलकर नहाती रही, लेकिन गंध न जाए। बदबू जैंसे मन में घुस गयी थी। खाते–सोते बदबू मँडराती रहती। संतोष सास के साथ काम पर रोज जाने तो लगी लेकिन बदबू का एहसास कम न हुआ। उसकी नैंसर्गिक संवेदना तक मर गयी। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मैंला ढोने की प्रथा नगरीकरण का अभिशाप है। कितने जीवट वे लोग होते हैं जो इन अमानवीय परिस्थितियों में जीने के बावजूद अपने को इंसान बनाए रखते है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि 'अम्मा' कहानी में अम्मा का चरित्र ही नहीं उकेरते, वे दलित नैतिकता की अवधारणा भी प्रस्तुत करते हैं। अम्मा सफाई कर–करके बेटे शिवचरण की पढ़ाई करवाती है। शिवचरण काम पर तो लग गया पर वह भी रिश्वत लेकर दूसरों को, भंगियों को काम दिलवाने लगा। पता लगने पर नैतिक अम्मा शर्म से गड़ गयी। बहुत पहले धनी मिसेज चोपड़ा के प्रेमी ने अम्मा पर हाथ डाला था तो अम्मा ने उसे पीटा ही नहीं, मिसेज चोपडा की बड़ी कमाई वाला काम भी छोड़ दिया। जब अम्मा का पोता मुकेश विधवा टीचर का रखैल बन गया तो अम्मा को बडा नैतिक धक्का लगा। अम्मा कहती है, "(टीचर) भले ही दो बच्चे की माँ है। मेंरा दिल खुश हो जाता। अपनी बहू बना के रखती... पर यो संबंध ठीक न है।" अम्मा की नैतिकता खाँटी है, "ऐसा कोई काम न करो जिससे सिर निच्चा हो।" स्वाभिमानिनी अम्मा नातिन, नातियों को कुछ देने के लिए बेटे से क्यों पैसे लें ? वे सफाई का काम करना जारी रखती है। मँझला बेटा बिशन समझाता हैः "अच्छा नही लगता अम्मा.... आप गंदगी ढोने जाती है..... लोग देखते है तो शर्म आती है।" बिशन की यह शर्म पाखंड है। करेंगे सब–कुछ, बस लोग न जानें। अम्मा की नैतिकता में पाखंड नही हैं। जो इन समाजों के लोंगो को नैतिक तो क्या इन्सान ही नही समझते, उनके सामने अम्मा जैसी पावन स्त्री नैतिकता की बड़ी लकीर खींच देती हैं। 'अम्मा ' हिन्दी की अविस्मरणीय कहानियों में गिनी जाएगी।

ओमप्रकाश वाल्मिकी की कहानी 'खानाबदोश' घर के रूप में आंतरिकता, सुरक्षा और अधिकार का स्वप्न देखने वाली 'मानो' भट्ठे पर ईट पाथती है पर खुद बेघर है। अपने हाथ की बनी नयी, लाल–लाल ईंटें देखकर उसके मन में एक सपना उगता है– 'मेरा घर ऐसी ही ईंटों से बने।' फिर दिन–रात की हाड़–तोड़ मशक्कत शुरू। भट्ठे के मालिक के बेटे 'सूबे सिंह ' को भट्ठे पर काम करने वाली औरतों का चस्का है। वह मानो पर भी हाथ डालता है पर मानो बिफर जाती है। गुस्से में सूबे सिंह उसकी बनायी कच्ची ईटों को तुड़वा देता है। मानो की दिहाड़ी ही नहीं मारी जाती है, उसका स्वप्न टूट जाता है। मानो संकेत समझ जाती है। वह पति के साथ भट्ठा छोड़कर चल देती है। वह बेघर थी, घर की उम्मीद भी चली गयी। उसे फिर खानाबदोश रहना है।

कुसुम वियोगी की कहानी के 'अतरो' और हेमलता महीश्वर की कहानी 'राग की रागी रागिनी' कहानी में विश्वसनीयता का घोर अभाव दिखता है। स्वप्न और यथार्थ में फाँक के दर्शन अनेक कहानियों में होते हैं। यथार्थ तो अनुभव को सुसंगत दृष्टि से छानबीनकर ही निकलेगा। जयप्रकाश कर्दम ऐसे ही विरल रचनाकारों में से हैं जो साहस के साथ दलित यथार्थ को आलोचनात्मक रूख के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानियों की दलित स्त्रियाँ प्राचीन छवि से मुक्त है।

'गँवार' कहानी में जयप्रकाश कर्दम नागर बनाम ग्रामीण का अन्तर्द्वन्द्व ही सामने नहीं लाते, नागर दलितों में आ रही व्यवहारिकता और लालसा की ओर भी संकेत करते है। 'वाचक' गँवार है, लेकिन अब शहर में आ गया है, थोड़ा –बहुत सफल भी दिखता है। कभी वह गाँव में दलितों के बीच सामाजिक काम किया करता था। वहीं उसका प्रेम नागर स्त्री 'आभा' से होता हैं। तब 'वाचक' एक मामूली क्लर्क था। तनख्वाह मामूली, उस पर बड़ी पारिवारिक जिम्मेदारी। आभा उसमें कई गुण देखती है पर वह गँवार और मामूली पद वाला है। आभा 'लाइफ को इंज्वाय' करना चाहती है। वह ऐसे गँवार और मामूली वेतन वाले से क्यों शादी करे' वह एक धनी नौजवान से शादी करती है, तीन बच्चे होते है। पति गुजर जाता है तो उसके 'धनी' होने की पोल भी खुल जाती है। आभा आँगनबाड़ी में शिक्षिका की मामूली नौकरी से किसी तरह बच्चे पाल रही है। पति की मौत के बाद उसके कई अफेयर चले। इस बीच 'वाचक' गजेटेड ऑफिसर हो गया। उसके पास कार तक हो गई। उसकी सफलता से चमत्कृत आभा अब मेलजोल बढ़ाना चाहती है तब वाचक विन्रमता से टाल जाता है। आभा स्याह या सफेद चरित्र नही है,वह बीच की है।

'मूवमेंट' कहानी की सुनीता दलित आंदोलन में काम करने वाले अपने पति पर ही परिवार और पत्नी की उपेक्षा का आरोप लगाती हैं। वह बराबरी का हक चाहती है। वह कहती है "बराबर' कब समझा है? समझते हो अपने निर्णयों में मुझें भी भागीदार बनाते, मुझे भी कन्सल्ट करते। यही तो सबसे बड़ी त्रासदी है मेरी कि हर काम में तुम्हारा साथ निभाकर भी मै कही नही हूँ। मेरी कोई कीमत या कद्र नही है। तुम समाज के बीच जाते हो। समाज में तुम्हारी पहचान है। मान–सम्मान है और मै इस चारदीवारी के बीच पिसती हूँ। मेरा कोई एक्जिस्टेंस नही है।"[14]

इस तरह हम देखते है कि समय या समाज के ज्वलंत सवालों से निरंतर जूझते –टकराते हुए दलित कहानी पिछले पचास वर्षों की अपनी यात्रा के दौरान विभिन्न पड़ावों को पार कर जिस मुकाम पर पहुँची और जिस दुनिया के निर्माण हेतु प्रयासरत रही है वह मनुष्य और मनुष्यता की दुनिया है जो मानवीय समानता, स्वंतत्रता, प्रेम, सद्भाव और सह–अस्तित्व पर आधारित है।

'अमरीकी' अश्वेत लेखक जॉन ए. विलियम्स के मुहावरें में कहें तो ऐसा नही होने पर अलग–अलग जातियों, नस्लों, योनियों सबका अलग–अलग साहित्य होगा और इस तरह अनेक 'लिटररी गेटो'बन जाएँगे। विभाजन के इतने कारण है कि समाज तब तक बँटता चला जाएगा जब तक व्यक्ति अंततः एक अकेला में विसर्जित न हो जाए। और तब शायद साहित्य की जरूरत भी समाप्त हो जाएगी। इसलिए दलित कहानी को भी अंततः साहित्य और श्रेष्ठ साहित्य होना चाहिए।[15] इस संदर्भ में हिंदी दलित कहानियो में स्त्रियों की छवि में वास्तविकता होनी चाहिए। एक घिसी पिटी पुरानी लीक पर चलने का पूर्वाग्रह समाप्त होना चाहिए। अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखने के लिए दलित लेखन को छोटे से छोटे दायरे में बंद नही रखना चाहिए। अधिकांश हिंदी दलित कहानियों में पूर्व के उन्हीं अत्याचारों को बार–बार दोहराया जाता है जिनके भोक्ता आज 'वे' नही है। अत्याचार के रूप–रंग आज बदल चुकें है वे भी साहित्य की परिधि में आना चाहिए। क्या अपनी, संस्कृति, अपनी परंपराएँ, अपने पर्व –त्यौहार इन पर गर्व करते हुए सम्मान नहीं पाया जा सकता ? हिन्दी दलित कहानी में वर्णित स्त्री की छवि रूढ़ हो चुकी है एक शोषित, पीड़ित प्रतिक्रियावादी, अबला के रूप में। इसमें परिवर्तन की आवश्यकता है।

हिन्दी दलित कहानियाँ भले ही दलित उददेश्य से लिखी जाय परंतु उसके पाठक कलात्मक रूप से सुधड़ कहानियाँ पढ़ने के अभ्यासी हैं चाहे वह पाठक दलित हो या गैर –दलित।

अतः हिन्दी दलित कहानियों का कलात्मक निर्वाह आवश्यक है। मौजूदा कहानियों के आधार पर दलित स्त्री की जो छवि बनती है, वह इकहरी है। वे क्रोध करती है, पर कोई कमजोरी उनमें नही है। वे विरोध करती है, पर आत्मनिरीक्षण नही। इकहरे, अविश्वसनीय चरित्र कहानी की प्रभावोत्पादकता को ही क्षीण कर देते है।

वास्तविकता को देखते हुए स्त्रियों की नई छवि गढ़ने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. मनोज कुमार जैन, दिसंबर 2000, पृ.सं. 10, आजकल, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली–110001
2. देवेंद्र चौबे, आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श, 2009, पृ.सं. –109 ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, 1/24 आसफ अली रोड नई दिल्ली–110002.
3. मनोज कुमार जैन, दिसंबर 2000,पृ.सं.–10, आजकल, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली–110001.
4. महेन्द्र बेनीवाल, कथादेश मार्च 2012, पृ.सं.–42, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि. L.57B पॉकेट – एल, दिलशाद गार्डन, दिल्ली
5. जयप्रकाश कर्दम, दलित स्त्री के हक में, परिषद पत्रिका, प्रकाशन–2005 पृ.सं.–83, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग, पटना–700004.
6. चन्द्रभान सिंह यादव, जून 2014, पृ.सं.–80, हंस, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 2/36 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–2
7. चन्द्रभान सिंह यादव, जून 2014, पृ.सं.–81, हंस अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–2
8. अरूण प्रकाश दलित से स्त्री, पृ.सं.–74, मार्च 2005, परिषद्–पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग, पटना–700004
9. डॉ. चमनलाल, दलित साहित्य, अंक–2001,पृ.सं.–35
10. रजत रानी मीनू,मार्च 2014, पृ.सं.–41, आजकल, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली–110001.
11. रजत रानी मीनू, मार्च 2014, पृ.सं.–42, आजकल, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली–110001.
12. विजय, कथा संग्रह 'जझद', रेमाधव पब्लिकेषन प्रा. लिमिटेड c. 22 तीसरी मंजिल, RDC राज नगर, गाजियाबाद, उ.प्र. –201002.
13. महेंद्र बेनीवाल, मार्च 2012, पृ.सं. 42, कथादेश, सहायता प्रा. लि., दिल्ली.
14. अरूण प्रकाश, दलित में स्त्री, पृ.सं. 74–82, मार्च 2005, परिषद पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग, पटना–700004.
15. 'अरूण कमल' संपादकीय, आलोचना त्रैमासिक–2005, राजकमल प्रकाशन
16. अरूण प्रकाश, दलित में स्त्री, पृ.सं.–75, मार्च 2005 परिषद पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग, पटना–700004.